परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैकक:।
सर्वभावांतरध्वंसिस्वभावत्वादमेचक: ॥१८॥

क्या कहते हैं? **शुद्ध निश्चयनय से देखा जाये तो प्रगट...** व्यक्त.... अर्थात् प्रगट ज्ञायकस्वभाव ज्योतिमात्र से आत्मा एक स्वरूप है। आहाहा...! अन्तर्दृष्टि से शुद्धनय से देखने पर ज्ञायक व्यक्त/प्रगट ज्ञायकस्वभाव एक नजर में-दृष्टि में आता है। आहाहा! शुद्ध निश्चयनय से देखा जाये तो **व्यक्त-ज्ञातृत्व-ज्योतिषा** व्यक्त अर्थात् **प्रगट ज्ञायकत्वज्योति.....** भाव, अकेला ज्ञायकमात्र आहाहा...! यह ज्ञान की प्रधानता से कथन है परन्तु है अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण; उन अनन्त गुणों का अन्त नहीं, इतना ज्ञायकस्वभावमात्र आत्मा, अन्तर्मुख देखने से एकरूप ज्ञायकमात्र प्रगट देखने में

अर्थात् श्रद्धा में आता है। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है। एक आत्मा, एक स्वरूप है। आहाहा!

सर्व-भावान्तर-ध्वंसि-स्वभावत्वात् क्योंकि शुद्धद्रव्यार्थिक नय से.... अन्तर्मुखस्वभाव की दृष्टि से देखने से.... आहाहा! अमाप... अमाप गुण का भण्डार भगवान (है), उसकी-शुद्धद्रव्य की दृष्टि से... अन्तर में एकरूप... यद्यपि वहाँ गुण का अन्त नहीं है, उसमें इतने गुण हैं कि गुण का अन्त नहीं है कि यह अनन्त... अनन्त में की अन्तिम अनन्त का यह अन्त है — ऐसा नहीं है और अन्त के अनन्त में यह अन्त का अंश है — ऐसा भी नहीं है। आहाहा! प्रगट, व्यक्त अर्थात् प्रगट, अन्तर ज्ञायकज्योति अन्तर्मुख एकरूप देखने से **अन्य द्रव्य के स्वभाव तथा अन्य के निमित्त से होनेवाले विभावों को दूर करनेरूप उसका स्वभाव है,....** आहाहा!

क्या कहते हैं **सर्व-भावान्तर-ध्वंसि-स्वभावत्वात्** भगवान पूर्णानन्द का नाथ स्वभाव के, आश्रय से दृष्टि होने से यह उसका स्वभाव, रागादि विभाव का नाश करने का स्वभाव है। रागादि को-व्यवहाररत्नत्रय को उत्पन्न करना, वह उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह व्यवहार रागादि है, वे भगवान ज्ञानस्वरूप... आहाहा! अगाध अगाध शक्ति का भण्डार प्रभु वह... आहाहा! व्यक्त प्रगट ज्ञातृ है। उसका स्वभाव, विभाव का नाश करने का स्वभाव है। व्यवहाररत्नत्रय का राग उत्पन्न करने का तो स्वभाव नहीं परन्तु उसका नाश करने का स्वभाव है। आहाहा!

बहुत बात.... अभी तो यह चलता है कि व्यवहार करो, व्रत, तप, भक्ति, पूजा (करो), वह निश्चय को प्राप्त करायेगा। अरे प्रभु! आहाहा! (जहाँ) निश्चय वस्तु है वहाँ राग का स्पर्श नहीं। आहाहा! अन्तरवस्तु एक समय में परिपूर्ण अनन्त धर्म अर्थात् गुण के समुदायरूप एकरूप है। आहाहा! तीन — दर्शन, ज्ञान, चारित्र — की पर्यायरूप परिणमना — ऐसे देखना, वह तो व्यवहार है, और उसको मलिन कहने का व्यवहार है। आहाहा! क्यों? कि नय के अधिकार में आया है न! नय में अन्त में नहीं शुद्ध-अशुद्ध? आहाहा! मिट्टी में उसके अनेक बर्तन की पर्याय से देखो तो वह अशुद्धनय से है, आहाहा! और मिट्टी का एकरूप देखो तो शुद्धनय से है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा की दर्शन-ज्ञान-

चारित्र की निर्मलपर्याय... आहाहा! पर्याय से देखो तो वह अशुद्धनय है, आहाहा! वहाँ मेचक कहा था, न दर्शन-ज्ञान-चारित्र को? भाई! मार्ग बहुत अलग है। प्रभु! बाहर के उत्साह और हर्ष में जगत अनादि से चला जा रहा है। इस व्यवहाररत्नत्रय के उत्साह में भी... उसको निश्चय के बिना व्यवहार तो है नहीं परन्तु वह मानता है कि हमारे व्यवहार है। व्रत, तप, भक्ति, कषाय — शुभभाव जोरदार इतना चले... आहाहा! प्रभु! यह तो यहाँ कहते हैं कि वह तो राग है, अशुद्धता की उत्पत्ति है, उसकी तो यहाँ बात है ही नहीं परन्तु एकरूप भगवान आत्मा, यदि परमार्थ से देखा जाये तो उसका स्वभाव ऐसा है कि भेद का-अशुद्ध का नाश करने का स्वभाव है। आहाहा!

दूसरी दृष्टि से कहें तो इस पर्याय — दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय — से देखो तो वह अशुद्धनय है। आहाहा! यहाँ राग की बात नहीं है, मात्र भगवान एकरूप अनन्त गुण का व्यक्त/प्रगटरूप स्वरूप की दृष्टि से देखो तो वह एकरूप है और उस अपेक्षा से निर्मल है, अभेद है; आहाहा! वह शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषय है। जबकि यह दर्शन-ज्ञान और चारित्ररूप परिणमे, वह व्यवहारनय का विषय है, वह अशुद्धनय का विषय है, वह भेदरूप नय है। वह तो मलिनता कही गयी है। आहाहा! गजब बात है!

श्रोता : प्रयोजनभूत बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं? आहाहा! और भगवान एकरूप त्रिकाल है, उस पर अन्तर की दृष्टि लगाने से द्रव्यार्थिकनय — द्रव्य अर्थात् अखण्ड पूर्ण वस्तु.... अभेद का अर्थ यहाँ अखण्ड एक वस्तु की दृष्टि से देखो तो एकरूप स्वरूप है, उसमें तीन भेद जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र के परिणमन वह भेद, उसमें नहीं आते। आहाहा! वह भेद भी जहाँ गौण हो जाते हैं — अपनी निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय भी त्रिकाली को देखने से... वह निर्मलपर्याय भी व्यवहार-गौण हो जाती है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है भाई! इस प्रकार न जँचे... स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! अशुद्धरूप से परिणमना, उसकी तो बात ही कहाँ रही? आहाहा! व्रत, तप, भक्ति और पूजा — यह परिणाम तो अशुद्ध है। आहाहा! यहाँ तो शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा अपनी पर्याय में दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमे तो उसे भी अशुद्धनय का विषय कहा गया है। आहाहा! ऐसी बात है। उसे मेचक कहा है, उसे व्यवहार कहा है। आहाहा!

यह प्रवचनसार की ४६ और ४७ नय है, चार और छह तथा चार और सात.... पहला अशुद्ध (नय) है। आहाहा! आत्मा को एकरूप देखना, वह शुद्धनय अर्थात् यथार्थदृष्टि है तथा पर्यायभेद से (अर्थात्) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के पर्यायभेद से देखना, वह अशुद्धनय है, उसे यहाँ मेचक कहा है। अरे, ऐसी बातें हैं बापू! आहाहा! लोगों का विवाद तो अभी बाहर का है। व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, इतना परीषह सहन करे और उससे यह सब प्राप्त करेगा। आहाहा!

श्रोता : सब बाहर की बातें हैं अन्दर का कुछ नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की बातें... अन्तर का नाथ, स्वभाव का सागर एकरूप को देखने से यह सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! उस त्रिकाली शुद्ध को देखने से (सम्यग्दर्शन होता है) अभेद कहो या शुद्ध कहो; द्रव्य कहो, अभेद कहो, शुद्ध कहो, द्रव्यार्थिकनय का विषय कहो, (सब एकार्थ हैं)। आहाहा! उसकी दृष्टि से भगवान एकरूप है, वह वस्तुस्वभाव विभाव का नाश करने का स्वभाव है; विभाव की उत्पत्ति करने का उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया? अखण्ड एक स्वभाव की दृष्टि में... एक स्वभाव, वह विभाव का नाश करने का उसका स्वभाव है। है, देखो?

सर्व-भावान्तर... भावान्तर अर्थात् अपने भाव के अतिरिक्त अन्य भाव, भेदभाव, अशुद्धभाव, रागभाव आदि। आहाहा! अरे! दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय भेदभाव (है)। आहाहा! है? **सर्व-भावान्तर...** अपने ज्ञायकभाव से अन्तर-अन्य, आहाहा! अपना ज्ञायक स्वभाव / स्वरूप एकरूप से अन्य... राग या भेदभाव... आहाहा! **भावान्तर-ध्वंसि-स्वभावत्वात्** उसका तो नाश करने का स्वभाव है। आहाहा! प्रभु! तब व्यवहार से निश्चय होता है, यह बात तो बड़ा मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? श्लोक बहुत अच्छा आया है। आहाहा! बहुत भरा है, ओहोहो!

अन्तर्मुखदृष्टि से देखने से एकरूप देखने में आता है और वह एकरूप दृष्टि हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन और वह स्वभाव एकरूप जो दिखता है, उसका स्वभाव ऐसा है कि भेद को और अशुद्धता को नाश करने का स्वभाव है। आहाहा! यह अखण्ड, अभेद और शुद्ध जो स्वभाव है, वह भेद को और राग को उत्पन्न करे — ऐसा तो उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! गजब बात करते हैं।

पुण्य और पुण्य का परिणाम, व्यवहाररत्नत्रय, व्रत, तप, भक्ति, पूजा और गजरथ... आहाहा! ऐसा शुभभाव... उसका स्वभाव भगवान का एकरूप है, वह भेद-अशुद्धता का नाश करने का स्वभाव है, वह तो ठीक, परन्तु उस एकरूप स्वभाव की दृष्टि से, एकरूप स्वभाव, दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो भेद है, उसका भी अभाव करने का स्वभाव है। आहाहा! भेद का भी नाश करने का स्वभाव है। आहाहा! ऐसी बात है। अरे...रे! गाथा बहुत अलौकिक है!!

परमार्थेन, परमार्थ से अर्थात् यह पर का परमार्थ करना वह? आहाहा!

श्रोता : त्रिकाल स्वभाव का स्वीकार करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमार्थ अर्थात् परमपदार्थ की दृष्टि से... ऐसा। परमपदार्थ भगवान पूर्णानन्द अनन्त आनन्द का कन्द वह, आहाहा! परमपदार्थ की दृष्टि से देखने पर, आहाहा! यह प्रगट ज्ञायक ज्योतिमात्र आत्मा एकस्वरूप है। आहाहा! शुद्ध को देखने से, अभेद को देखने से, आहाहा! वह एकरूप स्वभाव है। एकरूप कहो, शुद्ध कहो, अभेद कहो (सब एकार्थ हैं)। आहाहा! और वह शुद्ध स्वभाव, एकरूप स्वभाव का-अशुद्धता का पर्याय भेद का भी अभाव करने का स्वभाव है — ऐसा मार्ग लोगों को कठिन पड़ता है, क्या हो भाई? इसमें बड़ा विवाद खड़ा हुआ है न भाई! प्रभु का मार्ग! आहाहा!

वीतरागस्वभावरूप से शुद्ध अखण्ड प्रभु व्यक्त प्रगट पड़ा है न! आहाहा! उसको देखने से एकरूप ही है और एकरूप द्रव्य का स्वभाव, अनेकरूप अशुद्धता और भेद का नाश करने का स्वभाव है। आहाहा! क्योंकि अभेद की-एक की दृष्टि में भेद देखने में नहीं आता; इस कारण भेद का भी अभाव करने का स्वभाव है। आहाहा! ऐ...ई...! क्या भेद? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल पर्याय, वह भेद। आहाहा! वह अशुद्धनय का विषय है। अशुद्धनय कहो, व्यवहार कहो, मेचक कहो; उसे मलिन कहने का व्यवहार कहो। आहाहा! भगवान एकरूप स्वभाव जो त्रिकाल (है), उसे शुद्ध कहो, निर्मल कहो, एक कहो, द्रव्यार्थिकनय का विषय कहो। आहाहा! यह शुद्धनयस्वरूप कहो — यह उसका स्वभाव... आहाहा! उसकी दृष्टि करने से, ऐसे पूर्ण स्वभाव का आश्रय लेने से, पूर्ण स्वभाव का अवलम्बन लेने से, पूर्ण स्वभाव का एकरूप का

स्वीकार करने से... आहाहा! ऐसी कठिन चीज है। यह भेद-सर्व भावान्तर है न? सर्व भावान्तर, अपने अभेद स्वभाव के अतिरिक्त... आहाहा! सर्व भावान्तर (अर्थात्) अपने ज्ञायक एकरूप भाव से अन्य भाव अशुद्ध और पर्यायभेद, सबका नाश करने का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? अलौकिक बात है प्रभु! अन्दर इस चैतन्य की लीला अलौकिक है। आहा! आहा!

जिसकी पर्याय अन्तर्मुख होने से अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण का पिण्ड प्रभु, जिस गुण का अन्तिम-आखिर का यह — ऐसा नहीं। (असीम गुणस्वरूप है), उसका सम्यग्ज्ञान पता ले लेता है। क्या कहा यह? बापू! ज्ञान अर्थात् यह शास्त्र का पठन और वह कोई ज्ञान नहीं। आहाहा! अन्तर जो अखण्ड अभेदस्वरूप है, (उसका) ज्ञान हुआ, वह ज्ञान की पर्याय अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ऐसे गुण का प्रकार, जिसका अन्त नहीं, गुण की संख्या का — ऐसा अनन्त का, ज्ञान की पर्याय अन्त ले लेती है। अन्त अर्थात् उसका ज्ञान कर लेती है। आहाहा! समझ में आया?

भाई! अभी तो मार्ग बहुत गड़बड़ हो गया है। अभी तो यह चोर कोतवाल को डण्डे — ऐसा हो गया है। आहाहा! प्रभु! सत्य तो यह है न नाथ! आहाहा! तेरा साहिब अन्दर अनन्त आनन्द के गुणादि से भरपूर प्रभु है न नाथ! आहाहा! इस तेरे साहिब की सम्पदा का क्या कहना, क्या कहना! प्रभु! तेरी सम्पदा और तेरे गुण की संख्या का क्या कहना!! आहाहा! ऐसे एकरूप अनन्त गुण होने पर भी, भेद की दृष्टि न करने से, आहाहा! एकरूप अभेद की दृष्टि करने से... यह शुद्ध कहो, उसको अभेद कहो, उसको एक कहो, उस अभेद एक और शुद्ध दृष्टि अथवा अभेद शुद्ध और एक स्वभाव, अशुद्धता और अनेक भाव का नाश करने का उसका स्वभाव है। आहाहा! भले पर्याय है परन्तु उसे गौण कर देने का उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? शशीभाई! ऐसा है स्वरूप, भाई! आहाहा!

श्लोक बहुत अलौकिक है! इसमें विशेष क्या आया? **सर्व भावान्तरच्छिदे,** आहाहा! भगवान अन्दर गुण-गुणी के भेद से भी रहित अभेद, एक शुद्ध द्रव्य जिसका प्रयोजन है, ऐसे नय से देखो तो... आहाहा! वह स्वभाव एकरूप है — ऐसी दृष्टि हुई तो सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन हुआ, क्योंकि अभेद वस्तु है ही;

वह शुद्ध है, एक है — ऐसी दृष्टि हुई तो वह सम्यक्/सत्यदृष्टि हुई। आहाहा! और राग की दृष्टि है, वह तो मिथ्यादृष्टि है, उससे लाभ माननेवाला तो... उसका — ज्ञान-दर्शन-चारित्र का निर्मल पर्याय का भेद का लक्ष्य है, वह अशुद्धता और व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है भाई! भगवान पूर्णानन्द का नाथ एकरूप स्वरूप... आहाहा! चैतन्य रत्नाकर, चैतन्य के अनन्त रत्नों का 'आकर' अर्थात् समुद्र, वह व्यक्त अर्थात् प्रगट वस्तु है, उस पर दृष्टि देने से एक रूपता दृष्टि में आती है और वह एकरूप का स्वभाव, अभेद का स्वभाव, शुद्ध का स्वभाव, वह अपना अभेदभाव स्वभाव के अतिरिक्त — अन्य भाव के अभाव करने का स्वभाव है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

श्लोक बहुत (गम्भीर है)! ओहो! सन्तों ने थोड़े शब्दों में सारा समुद्र भर दिया है, गागर में सागर भर दिया है!! आहाहा! सागर का चित्र बनाकर गागर में डाले, वह कोई सागर नहीं। आहाहा! थोड़े शब्दों में अन्दर सारा सागर भर दिया है। प्रभु! तेरा पार नहीं। प्रभु! तू ऐसा है न नाथ! तेरे गुण का पार नहीं, इतने गुण होने पर भी इसे व्यक्त एकरूप कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! दर्शन, चौदहवीं गाथा में दर्शन का अधिकार हुआ। पन्द्रह में ज्ञान का, (सोलह में) दर्शन-ज्ञानसहित यह स्थिरता का अधिकार है। आहाहा! यहाँ भगवान एकरूप है — ऐसी दृष्टि हुई, वहाँ स्थिरता करना है। उस एकरूप स्वभाव में स्थिरता और रमणता करना है। अतः अभी एकरूप स्वभाव दृष्टि में नहीं आया, उसे स्थिरता कहाँ करना? आहाहा! तो उसे चारित्र तो कहाँ से आता है? यहाँ ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अनन्त... अनन्त धर्मस्वरूप भगवान एकरूप, एकरूप दृष्टि में आया नहीं, वेदन में आया नहीं, अनुभव में आया नहीं तो उसमें रमना... वह चीज तो दृष्टि में आयी नहीं तो रमना कहाँ से होगा? आहाहा! तथापि..... उस स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता — तीन भेद का लक्ष्य करना, वह भी अशुद्धनय का विषय है। आहाहा! इस अशुद्धनय के विषय का अभाव करना, एकरूप स्वभाव का स्वभाव है। आहाहा! आहाहा!

अन्य द्रव्य के स्वभाव और अन्य द्रव्य के निमित्त से होनेवाले विभाव को दूर करने रूप उसका स्वभाव है, इसलिए वह अमेचक है। कौन? त्रिकाली ज्ञायकभाव

अमेचक है, एक है, शुद्ध है। आहाहा! और पर्याय के भेद अनेक हैं, अशुद्ध हैं, व्यवहार हैं, मलिन कहे जाते हैं। आहाहा! यह वाणी कहाँ है भाई! दिगम्बर सन्त तो केवलज्ञान के मार्गानुसारी (है, उन्होंने) केवलज्ञान को खड़ा रखा है। आहाहा! तीन बोल लिये — अमेचक है, शुद्ध है, एकाकार है — ऐसा। पर्यायभेद, वह अशुद्ध है, अनेक है, अनेकाकार है। आहाहा! क्या अनेक? दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्यायरूप से तीन रूप होना, वह अशुद्ध है, अनेकाकार है। आहाहा! एक नहीं अनेक है, व्यवहार है। गजब बात है प्रभु! आहाहा! राजमल्ल की टीका में तो मेचक, मलिन कहने का व्यवहार है। ऐसा कहा है। आहाहा! आहाहा! श्लोक बहुत ऊँचा है! भाग्यशाली को तो इसके अर्थ कान में पड़ें ऐसी बात है!! आहाहा! इसमें विवाद और वाद-विवाद से कहाँ पार पड़ेगा।

श्रोता : यह तो अन्तर में समा जाने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! जहाँ यहाँ अन्दर स्वरूप जो एकरूप है, उसको एकरूप, शुद्ध और अभेद कहा। यह ज्ञान, दर्शन, चारित्र की निर्मल पर्यायरूप परिणमे, उसे भी अशुद्ध, व्यवहार, मेचक, मलिन (कहा है)। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ : भेददृष्टि को गौण करके.... ऐसा कहा। नाश करने का अर्थ गौण करके (— ऐसा किया है)। समझ में आया? दर्शन, ज्ञान, और चारित्र की पर्याय का भेद है तो उसे गौण कर दिया। अखण्ड ज्ञायकभाव की दृष्टि में उसका कोई मूल्य नहीं। गौण कर दिया। आहाहा! नाशवान कहा न? स्वभाव ऐसा है कि भेद को और अन्य को नाश करने का... उसका अर्थ किया है कि नाश करने का अर्थ क्या? समझ में आया? कि **भेददृष्टि को गौण करके....** ऐसा। आहाहा! निर्मल पर्याय — ज्ञान, दर्शन, चारित्र की है परन्तु उसको गौण करके... आहाहा! उसको — त्रिकाली स्वभाव — नाश करने का स्वभाव — ऐसा कहा जाता है। गौण करने का अर्थ? उसकी कोई गिनती नहीं। आहाहा! गिनती में लेने की चीज तो यह अखण्ड आनन्द शुद्ध एक ही है। आहाहा! आहाहा!

ऐसा मार्ग! वस्तु का स्वरूप ऐसा है, पर्याय को गौण किये बिना द्रव्य की दृष्टि होगी ही नहीं और द्रव्य की दृष्टि हुई, वहाँ सम्यग्दर्शन आदि पर्याय भी गौण हो जाती है

क्योंकि अभेद में भेद नहीं दिखते। आहाहा! यह सातवीं गाथा (में विषय आया है)। **भेददृष्टि को गौण करके अभेददृष्टि से देखा जाये तो आत्मा एकाकार ही है,....** शुद्ध है, एक है, अभेद है, निश्चय है, वही अमेचक है, वह निर्मल है। आहाहा! कठिन काम भाई!

कलश - १९

आत्मा को प्रमाण-नय से मेचक, अमेचक कहा है, उस चिन्ता को मिटाकर जैसे साध्य की सिद्धि हो वैसा करना चाहिए, यह आगे के श्लोक में कहते हैं —

(अनुष्टुभ्)

आत्मनश्चित्यैवालं मेचकामेचकत्वयोः।
दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा॥१९॥

श्लोकार्थ : [आत्मनः] यह आत्मा [मेचक-अमेचकत्वयोः] मेचक है — भेदरूप अनेकाकार है तथा अमेचक है — अभेदरूप एकाकार है [चिन्तया एव अलं] ऐसी चिन्ता से तो बस हो। [साध्यसिद्धिः] साध्य आत्मा की सिद्धि तो [दर्शन-ज्ञान-चारित्रैः] दर्शन, ज्ञान और चारित्र — इन तीन भावों से ही होती है, [न च अन्यथा] अन्य प्रकार से नहीं (यह नियम है)।

भावार्थ : आत्मा के शुद्ध स्वभाव की साक्षात् प्राप्ति अथवा सर्वथा मोक्ष वह साध्य है। आत्मा मेचक है या अमेचक, ऐसे विचार ही मात्र करते रहने से वह साध्य सिद्ध नहीं होता, परन्तु दर्शन अर्थात् शुद्ध स्वभाव का अवलोकन, ज्ञान अर्थात् शुद्ध स्वभाव का प्रत्यक्ष जानना और चारित्र अर्थात् शुद्ध स्वभाव में स्थिरता से ही साध्य की सिद्धि होती है। यही मोक्षमार्ग है, अन्य नहीं।

व्यवहारीजन पर्याय में-भेद में समझते हैं, इसलिए यहाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्र के भेद से समझाया है॥ १९॥

कलश-१९ पर प्रवचन

आत्मा को प्रमाण-नय से मेचक, अमेचक कहा है,.... क्या कहते हैं? त्रिकाली की दृष्टि से अमेचक है, पर्यायदृष्टि से मेचक है, दोनों ही प्रमाण से मेचक अमेचक दोनों कहा, प्रमाण अर्थात् दोनों को जाननेवाले प्रमाण से मेचक-अमेचक कहा **उस चिन्ता को मिटाकर....** आहाहा! वह भी विकल्प है-पक्ष है। आहाहा! **जैसे साध्य की सिद्धि हो....** आहाहा! मोक्ष, साध्य की सिद्धि हो ऐसे स्वरूप की एकाग्रता करना। आहाहा! ऐसा करना चाहिए, यह आगे के श्लोक में कहते हैं।

आत्मनश्चित्यैवालं मेचकामेचकत्वयोः।
दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा॥१९॥

यह श्लोक पहले कहा था। 'एक जानिये देखिए रमि रहिये इक ठौर!' आहाहा! एक जानिये देखिए रमि रहिये इक ठौर। आहाहा! समल विमल न विचारिये यही सिद्धि नहीं और। इस श्लोक का अर्थ है। यह श्लोक है न, उसका अर्थ। देखो, यह आया, बीसवाँ है न? परन्तु इसमें बीसवाँ लिया है। फिर इसमें आता है न इसलिए...

'एक जानिये देखिए रमि रहिये इक ठौर!' समल विमल न विचारिये... समल अर्थात् भेद, निर्मल अर्थात् अभेद। आहाहा! समल विमल न विचारिये। आहाहा! यही सिद्धि नहीं और। इसके अतिरिक्त अन्यथा कोई सिद्धि/मुक्ति नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

यह आत्मा मेचक... अमेचक कहा है। मेचक अर्थात् भेदरूप। मेचक कहो, भेद कहो, पर्याय कहो, अशुद्धता कहो, अनेकाकार कहो और अमेचक कहो। अभेद कहो, एकाकार कहो, शुद्ध कहो, एकरूप कहो, **ऐसी चिन्ता से 'अलम्' — ऐसी चिन्ता से बस हो।** आहाहा! ऐसे विकल्प की भेद की, अभेद की चिन्ता से बस होओ। 'अलम्' प्रभु! उससे कुछ लाभ नहीं है। आहाहा! आहाहा! है? अभेदरूप एकाकार **चिन्तया — ऐसी चिन्ता से बस हो। साध्य आत्मा की सिद्धि तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र — इन तीन भावों से ही होती है,....** परिणमन से — ऐसा कहते हैं। व्यवहार बतलाया न फिर? दर्शन, ज्ञान, चारित्र का परिणमन... परिणमन का विचार, यह अभेद है और शुद्ध है, यह भेद है और अशुद्ध है — ऐसे विकल्प से बस होओ। आहाहा!

अब ऐसा उपदेश! लोगों को फुरसत नहीं मिलती, पूरे दिन काम। अब ऐसा उसे समझना, वह कब समझे? आहाहा! निवृत्ति, क्या कहते हैं? फुरसत, फुरसत नहीं, २०-२२ घण्टे धन्धा और व्यापार और पाप में पूरे दिन होंश और हर्ष, पैसे में, स्त्री में, पुत्र में, धन्धे में.... आहाहा! उत्साह... उत्साह... ऐसा मानो, आहाहा! कहीं आत्मा का घात (हिंसा) हो जाये पता नहीं। आहाहा! 'पर की हरखूं होंशिडा मत होंश न कीजे' एक सज्झाय आती है, वह चार सज्झायमाला है न? उसमें आता है। पर में होश मत कर, प्रभु! पर में प्रसन्न मत हो। आहाहा! तेरा आनन्द का नाथ पड़ा है, वहाँ जा न प्रभु! आहाहा! वहाँ तेरे आनन्द का उत्साह आयेगा, आनन्द का अनुभव होगा। आहाहा!

बाहर में भटका भटक करते हैं। यहाँ से यह प्रसन्न, यह प्रसन्न, पैसा मिला, इज्जत मिली, कीर्ति मिली, सुन्दर शरीर, और लड़के मिले - आठ-आठ, दस-दस, बारह-बारह लड़के... आहाहा! दो-दो वर्ष में एक होवे तो चौबीस वर्ष में बारह, बारह लड़के!

श्रोता : बारह भाया!

पूज्य गुरुदेवश्री : बारह भाया है न, हमारे बीछिया में है। बीछिया में है। बारह भाया! दो-दो वर्ष में लड़का होवे तो चौबीस वर्ष में बारह। बीस वर्ष में विवाह किया हो, वहाँ तो ४४-४५ वर्ष में तो बारह लड़के हो जायें... धूलधाणी और वापाणी है! आहाहा!

श्रोता : अनन्त भव से यह किया होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही किया है। ऐसे जरा से में पैसे होवें, और उत्साह और पुत्र कमावे होश और हर्ष....

श्रोता : लड़के कमावें और खेत में से उपज आवे....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में है नहीं, क्या कमाये? आहाहा! लड़का किसका? पैसा किसका? खेत किसका? आहाहा! इज्जत-गुडविल और नाक लम्बा है। काट डालनेवाले हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं,... भाषा कैसी प्रयोग की है? **मेचक है — भेदरूप और अनेकाकार...** पर्याय के भेद, वे भेदरूप अनेकाकार और मेचक / मलिन। **अमेचक...**

अर्थात् **अभेदरूप और एकाकार है....** निर्मल ऐसा, ऐसा लेना। यह **चिन्तया एव अलं — ऐसी चिन्ता से तो बस हो।** इस **साध्य आत्मा की सिद्धि तो....** आहाहा! स्वभाव के आश्रय से दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमना, वह मुक्ति का उपाय है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का ध्येय (लक्ष्य) बनाकर द्रव्य को.... आहाहा! अभेद को, अमेचक को ध्येय बनाकर दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमना, निर्मल सम्यक्, हाँ! निश्चय; व्यवहार की यहाँ बात नहीं है। आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और चारित्र तीन भावों से वह होता है; अन्य प्रकार से नहीं। इस व्यवहार की क्रिया से और भेद से तथा रागादि से मुक्ति नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

किसी जगह व्यवहाररत्नत्रय का भिन्न साध्य साधन कहा हो परन्तु वह तो साधन का ज्ञान कराया है। आहाहा! वहाँ पकड़ते हैं देखो! भिन्न साध्य-साधन कहा है। अरे प्रभु! सुन तो सही भाई! वह तो राग की मन्दता की योग्यता थी तो ऐसा ज्ञान कराया। यह तो सैंतालीस नय में भी ऐसा आया है — व्यवहारनय से होता है, क्रियानय से मुक्ति होती है (तथा) ज्ञाननय से मुक्ति होती है। अरे प्रभु! आहाहा! यह तो एक ही समय में ऐसी योग्यता गिनने में आयी है। किसी को ज्ञान से (मुक्ति) होती है और किसी को क्रियानय से होती है - ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ तो कालनय से भी मुक्ति होती है और अकालनय से भी होती है (ऐसा भी आया है) तो किसी को कालनय से और किसी को अकालनय से (मुक्ति होती है) ऐसा है वहाँ? यह तो एक व्यक्ति को... आहाहा! अपने स्वकाल से होती है और अकाल अर्थात् स्वभाव तथा पुरुषार्थ से होती है, वह अकाल। आहाहा! समझ में आया?

मार्ग बहुत सूक्ष्म है भाई! आहाहा! **अन्य प्रकार से नहीं (यह नियम है)।** अपने शुद्ध द्रव्य को ध्येय बनाकर, एक अमेचक शुद्ध को ध्येय बनाकर जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र में परिणमना, वही मोक्ष का मार्ग है। यह पर्याय से समझता है तो पर्याय से समझाया है। समझ में आया? यह लिखेंगे... आहाहा! भावार्थ (में) यह आगे लिखेंगे। व्यवहारीजन पर्याय और भेदरूप से समझते हैं, इसलिए यहाँ ज्ञान-दर्शन-चारित्र भेद से समझाया है। है न नीचे? हाँ, अन्त में यह क्या कहा? फिर ऐसा कहते हैं कि दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप

परिणमना, वह तो भेद कहा है कि लोग भेद से समझ सकते हैं, इस अपेक्षा से कहा है। आहाहा! वरना समझाना तो अभेद है। आहाहा! आहाहा!

एक बहिन... कहा था न एक बार? जवान सुन्दर बहिन थी, इसमें उसे शीतला निकली शीतला। शीतला समझते हैं? (श्रोता : चेचक) हाँ, वह। वह दाने-दाने कीड़े... लाठी में, उसके पति की दूसरी स्त्री थी। पहली मर गयी थी यह दूसरी विवाही थी, दो वर्ष का विवाह, उसमें यह कीड़े पड़े। आहाहा! वह तड़ाईने, तड़ाई क्या कहते हैं? गद्दी, गद्दी ऐसे फेरे तो हजारों कीड़े, ऐसे फिरे तो हजारों कीड़े और पीड़ा... पीड़ा...! अपनी माँ से कहे माँ, मैंने इस भव में ऐसे पाप नहीं किये, मुझसे सहन नहीं होता, सोया नहीं जाता, बैठा नहीं जाता। आहाहा! देह छूट गयी। अमुक समय रही, (उस) समय पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा...!

अरे प्रभु! तूने अनन्त बार ऐसा सहन किया है। सम्यग्दर्शन बिना (सहन किया है) आहाहा! ऐसे अनन्त भव, प्रभु! कल भाई ने नहीं गाया था? तेरे दुःख को देखकर ज्ञानियों को भी रूदन आया है। आहाहा! भाई! तुझे इतने दुःख हुए। आहाहा! नरक में, निगोद में, उस दुःख को देखकर ज्ञानियों को आँसू आते हैं। अरर! यह क्या? करुणा आती है, कहते हैं। आहाहा! भाई! तुझे बचने का उपाय तो यह एक है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द के नाथ का आश्रय ले, तेरी सिद्धि होगी, दुःख का नाश होगा। आहाहा! दूसरा कोई उपाय है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ : आत्मा के शुद्ध स्वभाव की साक्षात् प्राप्ति अथवा सर्वथा मोक्ष वह साध्य है। देखो, साध्य! यह व्याख्या यहाँ की। द्रव्य ध्येय वह यहाँ अभी नहीं लेना है। आत्मा की-शुद्धस्वभाव की साक्षात् प्राप्ति अर्थात् क्या? शुद्ध स्वभाव तो है, शुद्धस्वभाव तो है, पर्याय में साक्षात् प्राप्ति होना... आहाहा! समझ में आया? **शुद्ध स्वभाव की साक्षात्....** क्यों कहा? पर्याय में बताना है। आहाहा! यह भगवान शुद्धस्वभाव का भण्डार परमात्मा तीन लोक का नाथ तो है ही, परन्तु उसकी पर्याय में शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति होना, वह साक्षात् प्राप्ति कही जाती है। आहाहा! ऐसी बातें बापू! **आत्मा के शुद्धस्वभाव की साक्षात् प्राप्ति अथवा सर्वथा मोक्ष वह साध्य है।** क्या कहते हैं? वस्तु तो मोक्षस्वरूप

है ही; साक्षात् प्रगट स्वभाव वस्तु तो है ही परन्तु पर्याय में साक्षात् प्राप्त करना; मुक्तस्वरूप तो है ही। समझ में आया? अकेला शुद्धस्वभाव स्वरूप तो है ही परन्तु पर्याय में साक्षात् प्राप्ति करना अथवा पर्याय में मोक्ष करना, वह साध्य है। ध्येय भले ही मोक्ष स्वभावस्वरूप भगवान आत्मा है, परन्तु पर्याय में मोक्ष प्राप्त करना, वह साध्य है। आहाहा! स्वभाव तो है ही परन्तु पर्याय में शुद्ध प्राप्त करना, वह साध्य है। मुक्त तो है ही, परन्तु पर्याय में मुक्ति प्राप्त करना, वह साध्य है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है।

परम सत्य! तीन लोक के नाथ तीर्थंकरों की यह आवाज है, दिव्यध्वनि है। इसे सन्त जगत के समक्ष आडतिया बनकर बताते हैं (कि) मार्ग तो यह है प्रभु! आहाहा! आत्मा का शुद्धस्वभाव तो त्रिकाल है ही; आत्मा मोक्षस्वरूप तो त्रिकाल है ही **साक्षात् प्राप्ति....** वर्तमान में प्राप्ति और वर्तमान में मोक्ष की दशा... आहाहा! वह साध्य है।

आत्मा मेचक है या अमेचक,.... व्यवहार और निश्चय, भेद और अभेद... **ऐसे विचार ही मात्र करते रहने से वह साध्य सिद्ध नहीं होता,....** ऐसे साध्य अर्थात् मुक्ति की पर्याय — शुद्धस्वभाव की पूर्ण प्राप्ति — ऐसे विचार करने से नहीं होती। आहाहा! **आत्मा मेचक है या अमेचक, ऐसे विचार ही मात्र करते रहने से वह साध्य सिद्ध नहीं होता,.... परन्तु दर्शन अर्थात् शुद्ध स्वभाव का अवलोकन,....** परन्तु दर्शन का अर्थ यह कि त्रिकाली का अवलोकन, प्रतीति; त्रिकाली स्वभाव का अवलोकन अर्थात् प्रतीति, अवलोकन अर्थात् जानना, प्रतीति। आहाहा! **अवलोकन, ज्ञान अर्थात् शुद्ध स्वभाव का प्रत्यक्ष जानना....** वह जानना। शुद्धस्वभाव का ज्ञान में प्रत्यक्ष वेदन होना, वह ज्ञान, **और चारित्र....** आहाहा! शुद्धस्वभाव का अवलोकन एक, ज्ञान-शुद्धस्वभाव का प्रत्यक्ष जानना... आहाहा! राग और निमित्त के अवलम्बन बिना भगवान का ज्ञान — सीधे ज्ञान होना, आहाहा! इन्द्रियों से जानकर जो ज्ञान हुआ है, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! शास्त्र पढ़कर, शास्त्र बाँचकर जो ज्ञान हुआ, वह तो शब्दज्ञान है, आत्मज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो जरा-सा शास्त्र का ज्ञान हो और कथन करने में जोर दे, जोर बरसाये... परन्तु क्या है जोर? प्रभु! तेरा लक्ष्य तो तू चूक जाता है। आहाहा! दुनिया प्रसन्न हो... प्रसन्न करने को तो यह कहते हैं। अरेरे...! यह तो विपरीतदृष्टि का भाव है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **शुद्ध स्वभाव का प्रत्यक्ष जानना....** वह ज्ञान। आहाहा! आहाहा! **और चारित्र अर्थात् शुद्ध स्वभाव में स्थिरता से ही साध्य की सिद्धि होती है।....** भगवान आत्मा में स्थिरता ही चारित्र है। आहाहा! शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, आहाहा! अवलोकन; अवलोकन अर्थात् देखना अर्थात् श्रद्धा करना और शुद्धात्मा का ज्ञान, आहाहा! वह भी प्रत्यक्ष जानना। आहाहा! भगवान परमानन्दस्वरूप प्रभु को ज्ञान-प्रत्यक्ष जानना, प्रत्यक्ष जानना; किसी राग की अपेक्षा नहीं। अरे... प्रभु! यह तो कोई बात है? आहाहा! और उस स्वरूप में स्थिरता करना। आहाहा! इस दर्शन-ज्ञान और चारित्र से साध्य की सिद्धि होती है, इसी प्रकार होती है। **यही मोक्षमार्ग है, अन्य नहीं।** दूसरा कोई मोक्षमार्ग है नहीं। आहाहा!

यह तो कहता है — मोक्षमार्ग दो है... वह तो निरूपण / कथन की अपेक्षा से कहा है; वास्तविक तो एक ही मोक्षमार्ग है। आहाहा! अरेरे! दो प्रकार के मोक्षमार्ग है? एक तो राग तो मोक्षमार्ग है... वह तो बन्ध का मार्ग है। बन्ध के मार्ग को आरोप से मोक्ष का मार्ग कहा। आहाहा!

व्यवहारीजन.... यहाँ अब क्या कहते हैं? कि तुम पहले तो ऐसा बहुत कहते थे कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह पर्याय, वह मेचक 'व्यवहार' अशुद्ध (है) ऐसा कहते थे। फिर तुम्हें दर्शन-ज्ञान-चारित्र को परिणमना — ऐसा कहा। समझ में आया? फिर एकरूप नहीं, तीन रूप परिणमना — ऐसा कहा। पहले तो कहते थे कि वह तो अशुद्ध है, व्यवहार है, मेचक है....

व्यवहारीजन पर्याय में-भेद में समझते हैं,.... यह समझाने की विधि दूसरी क्या कहें, बाकी। आहाहा! **भेद में समझते हैं,....** उनको भेद करके बतावे तो समझते हैं। आहाहा! **इसलिए यहाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्र के भेद से समझाया है।** देखो! निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद से समझाया है। वे भेद से समझते हैं, इस कारण (समझाया है) वरना वस्तु तो अभेद है। आहाहा!

आठवीं गाथा में कहा न? कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा.... यह तो व्यवहार कहा। समझ में आया? व्यवहार कहकर आचार्य ने आठवीं गाथा में ऐसा कहा

कि व्यवहार कहते हैं और व्यवहार विकल्प में आया है परन्तु हमें भी व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं है और तुझे भी व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं है। आहाहा! अनार्य.... आता है न? आहाहा!

श्रोता : अनुसरण करने योग्य नहीं — ऐसे भाव से धर्म होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा विकल्प आवे, समझाये, आये बिना रहता नहीं परन्तु उससे धर्म होता नहीं। उसे अनुसरण करने योग्य नहीं, भेद से समझाया — भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा — परन्तु उस भेद को आदरणीय / अनुसरण करने योग्य नहीं है। वह तो तुझे समझाने के लिए मैंने कहा, मुझे भी विकल्प आया है तो भेद से कहा। मुझे भी व्यवहार को अनुसरण करने योग्य नहीं, आहाहा! ऐसी बातें अब बहुत कठिन पड़ती हैं। आहाहा! पूरे दिन व्यापार में रुके, उसमें कभी सुनने जाये, उसमें ऐसा सिर पर बैठा हो वह पण्डित कहे उसे मानना, वह एक व्यक्ति कहता है। अरे दूसरा कहाँ परन्तु इसे पता भी नहीं पड़ता। बेचारा पाप में पूरे दिन पड़ा स्त्री, पुत्र और उनमें आकर फुरसत हो तो सुने, तो वह सिर पर पण्डित कहता हो — जय नारायण (उसे ऐसा होता है कि) यह भी समझकर कहता होगा न? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यह जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणमन कहा, तो हम तो पहले से मेचक और भेद कहा था, परन्तु उस प्रकार समझते हैं तो समझाया है। वरना तो दृष्टि का विषय अभेद है, उस तरफ ही ले जाना है। आहाहा! है! यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र भेद से समझाया है। अब विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)